



Peer Reviewed/
Refereed Journal

ISSN - PRINT-2231-3613/DNLN-2455-8729
International Educational Journal



CHETANA
Impact Factor SJIF=4.157

Received on 8th July 2019, Revised on 10th July 2019; Accepted 18th July 2019

आलेख

संवैधानिक संशोधन: बदलते सामाजिक-राजनीतिक आयाम

* बलवान सिंह गौतम

चेयर प्रोफेसर

आम्बेडकर पीठ, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय

Email-bs.20aug@gmail.com, Mobile-9971327848

मुख्य शब्द - सार्वजनिक कल्याण, संविधान की अपरिवर्तनशीलता आदि.

दुनिया के अधिकांश संविधानों का सबसे प्रमुख गुण स्थायित्व एवं उसका सार्वजनिक होना है। कोई भी संविधान शासन के सिद्धांतों और निर्देशों को मात्र प्रस्तावित ही करता है। इसका मुख्य कारण यह है कि संविधान निर्माता उन परिस्थितियों का पूर्वानुमान नहीं कर सकते, जो राष्ट्र के विकास के दौर में उत्पन्न हो सकती है और ना ही, उन सभी कानूनों एवं नियमों की स्थापना कर सकते हैं, जो बदलते समय के अनुसार समाज में न्याय प्रदान करने के लिए आवश्यक होता है। लिखित संविधान के लिए यह सम्भव नहीं है कि उसमें सभी उद्देश्य एवं लक्ष्यों का विस्तृत वर्णन किया जाए। यह बात भी कोई बड़ी बुद्धिमानी नहीं मानी जाएगी कि ऐसी भावी कठिनाइयों का जिनका अभी ठीक से आभास ही नहीं हुआ है, के लिए अनेक नियमों का प्रावधान कर दिया जाए। इन उभरती हुई परिस्थितियों से निबटने का काम विधायिका है। इसके अतिरिक्त आधुनिक संविधान मात्र सरकार की व्यवस्था के आधार की ही स्थापना नहीं करता है बल्कि सार्वजनिक कल्याण के लिए भी समुचित व्यवस्था करता है। इसके लिए समय देश काल के अनुसार सामंजस्य की सबसे अधिक आवश्यकता होती है।

चूँकि समय के साथ समाज आगे बढ़ता रहता है और यदि समाज की आंतरिक विकास प्रक्रिया की जरूरत के अनुसार संवैधानिक पुनः निर्धारण नहीं किया जाता है तो न केवल समाज की विकास प्रक्रिया में ठहराव आ जाएगा बल्कि वह पिछड़ भी जाएगा। अतः संविधान की अपरिवर्तनशीलता तार्किक रूप से संभव नहीं है। अगर संविधान औपचारिक संशोधन का प्रावधान नहीं करता है तो वह निश्चित रूप से असंवैधानिक एवं हिंसात्मक बदलाव के लिए रास्ता तैयार करता है। सी.जे. फ्रेडरिक के अनुसार 'एक सुनिर्मित संविधान खुद में संशोधन के लिए ऐसा चेयर प्रोफेसर अम्बेडकर पीठ, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, (हिमाचल प्रदेश) प्रावधान करेगा कि वह मानवीय सीमाओं के अंदर होने वाले सम्भावित उथल-पुथल को रोक सकेगा।¹

इसी प्रकार लार्ड मैकाले की यह टिप्पणी कि-“क्रान्ति का मुख्य कारण यह है कि राष्ट्र तो आगे बढ़ता रहता है, संविधान अपने ही स्थान पर यथावत् बना रहता है।”² संविधान संशोधन की आवश्यकता को बल देती है।

भारतीय संविधान के निर्माता भी देश के संविधान में संशोधन की आवश्यकता से अवगत थे और इस बात से भी परिचित थे कि संविधान में संशोधन की पद्धति बहुत अधिक कठिन नहीं होनी चाहिए। इसी दृष्टिकोण को अपनाते हुए पंडित जवाहरलाल नेहरू ने संविधान सभा में कहा था कि-“यद्यपि जहाँ तक सम्भव है, हम इस संविधान को एक ठोस और स्थायी संविधान का रूप देना चाहते हैं, संविधान में कोई स्थायित्व नहीं होता। इसमें कुछ लचीलापन होना ही चाहिए। यदि आप इसे

कठोर एवं स्थायी बनाते हैं तो आप एक राष्ट्र की प्रगति पर जीवित, प्राणवत एवं षरीरधारी पंक्तियों की प्रगति पर रोक लगा देते हैं।”³

भारत में एक संघीय शासन-व्यवस्था को अपनाया गया है। अतः अमेरिका, आस्ट्रेलिया और स्विट्जरलैंड के संविधानों की तरह भारत के संविधान को कठोर होना आवश्यक था लेकिन संविधान निर्माता अमेरिका जैसे अत्यधिक कठोर संविधान को अपनाने से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों से परिचित थे। अतः उनके द्वारा संविधान संशोधन के लिए संविधान में मध्यम मार्ग को अपनाया गया। संविधान निर्माता एक ऐसे संविधान का निर्माण करना चाहते थे जो राष्ट्रीय जीवन के विकास के साथ विकसित हो सके लेकिन साथ ही वे संविधान को इतना अधिक लचीला भी नहीं बनाना चाहते थे कि संविधान सत्ताधारी दल के हाथों में कठपुतली बन जाए। अतः भारतीय संविधान में संशोधन की एक ऐसी प्रक्रिया को अपनाया है, जो न तो इंग्लैंड के संविधान की भाँति लचीली है और न ही अमेरिका के संविधान की भाँति कठोर है।

संविधान-संशोधन की प्रक्रिया का वर्णन ‘अनुच्छेद 368’ में किया गया है। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत भारतीय संविधान में संशोधन के लिए तीन प्रणालियों को अपनाया गया है:

पहली, साधारण विधि के द्वारा संविधान संशोधन की प्रक्रिया:

संविधान के कई अनुच्छेदों में साधारण विधि-निर्माण की प्रक्रिया द्वारा संशोधन की व्यवस्था की गई है। संसद के साधारण विधि-निर्माण की प्रक्रिया द्वारा संशोधन की स्वीकृति मिल जाने पर किसी विधेयक द्वारा संविधान के अनुच्छेदों में परिवर्तन लाया जा सकता है। इस श्रेणी में मुख्य रूप से संविधान में राज्यों की सीमाओं, उनके क्षेत्रफल एवं नामों से जुड़े हुए अनुच्छेद शामिल हैं।

‘अनुच्छेद 3’ का सम्बन्ध राज्यों की सीमाओं, उनके क्षेत्रफल वे नामों से है। यह अनुच्छेद नए राज्यों के निर्माण की भी चर्चा करता है। ‘अनुच्छेद 4’ यह घोषणा करता है कि राज्यों के नामों, सीमाओं या क्षेत्रफल में परिवर्तन के लिए संविधान की पहली व चौथी अनुसूची में भी परिवर्तन जरूरी होंगे।

‘अनुच्छेद 169’ में कहा गया है कि संसद कानून बनाकर किसी राज्य में, जहाँ द्वितीय सदन है, उसका अन्त कर सकती है या जिस राज्य में द्वितीय सदन नहीं है, उसके निर्माण के लिए कानून बना सकती है। ‘अनुच्छेद 239-1’ के अनुसार संघ शासित क्षेत्रों के लिए विधानमंडल और मंत्रिमंडल की स्थापना की जा सकती है।

दूसरा, संसद के विशिष्ट बहुमत अर्थात् 213 बहुमत द्वारा संशोधन की प्रक्रिया

इस वर्ग में संविधान की वे व्यवस्थाएँ आती हैं जिनमें संशोधन के लिए दोनों सदनों के कुछ सदस्यों का बहुमत तथा उपस्थित और मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के दो-तिहाई मतों से पारित होना चाहिए। उदाहरण के लिए संविधान के ‘भाग तीन’ में दिए गए मौलिक अधिकार एवं ‘भाग चार’ में दिए गए राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त शामिल हैं वस्तुतः इस वर्ग में आने वाले अनुच्छेदों की सूची काफी लम्बी है। वास्तव में उपरोक्त पहले वर्ग (क) तथा नीचे तीसरे वर्ग (ग) में दिए गए अनुच्छेदों को छोड़कर और सभी अनुच्छेद ऐसे हैं जिन्हें संसद दो तिहाई बहुमत द्वारा बदल सकती है।

तीसरा संसद के विशिष्ट बहुमत तथा राज्य विधानमंडलों के अनुमोदन से संशोधन की प्रक्रिया

अंतिम और तीसरे वर्ग में संविधान की वे व्यवस्थाएँ आती हैं जिनमें संशोधन के लिए संसद के विशिष्ट बहुमत अर्थात् संसद के दोनों सदनों द्वारा अपने कुल बहुमत तथा उपस्थित एवं मतदान में भाग लेनेवाले सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से विधेयक पारित होना चाहिए तथा इस विधेयक का राज्यों के कुल विधानमण्डलों में से कम से कम आधे विधानमण्डलों द्वारा स्वीकृत होना आवश्यक है। यह प्रक्रिया निम्नलिखित संशोधनों के लिए आवश्यक है: राष्ट्रपति के चुनाव की विधि, राष्ट्रपति का निर्वाचन, संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार, राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार, केन्द्र शासित क्षेत्रों

के लिए उच्च न्यायालय, संघीय न्यायपालिका, राज्यों के उच्च न्यायालय, संघ और राज्यों के विधायी संबंध, संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व और अनुच्छेद 368 का संशोधन- इस अनुच्छेद में संशोधन की प्रक्रिया का विवरण दिया गया है। इस श्रेणी में आने वाले अनुच्छेदों के संशोधन की प्रक्रिया निश्चय ही बड़ी कठोर है। परन्तु यह व्यवस्था इसलिए की गई चूँकि उपरोक्त अनुच्छेदों का संबंध अकेले केन्द्र से न होकर राज्यों से भी है। जिन विशयों का संबंध केन्द्र और राज्यों दोनों ही के अधिकारों से हो, उसमें संशोधन का अधिकार न तो अकेले केन्द्र को दिया जा सकता है और न केवल राज्यों को।

अन्य सभी विधेयकों की ही भाँति संविधान संशोधन विधेयक भी तभी पारित समझें जाते हैं, जब राष्ट्रपति उनपर अपनी अनुमति प्रदान कर दें। 42वें संविधान संशोधन-कानून (1976) द्वारा स्पष्ट रूप से व्यवस्था कर दी गई कि राष्ट्रपति मंत्रि परिषद की मंत्रणा अथवा सलाह के अनुसार कार्य करेगा। इस संशोधन की कुछ विद्वानों और राजनेताओं द्वारा इस आधार पर आलोचना की गई कि राष्ट्रपति पद की गरिमा घट गई है और वह 'रबर की मोहर मात्र' बनकर रह गया है। इसलिए 1977 में केन्द्र में जब जनता पार्टी की सरकार बनी तो 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा यह व्यवस्था की गई कि राष्ट्रपति 'मंत्रि परिषद' से यह कह सकता है 'कवह अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें। पुनर्विचार के बाद मंत्रिमंडल जो मंत्रणा या सलाह देगा, राष्ट्रपति उसी के अनुसार कार्य करेगा।

संविधान संशोधन: संसद एवं न्यायपालिका में सर्वोच्चता का संघर्ष एवं "संविधान के मौलिक ढांचे के सिद्धांत" का प्रतिपादन

भारतीय संसद की संविधान संशोधन की शक्ति को संविधान लागू होने के बाद से ही चुनौती देनी प्रारम्भ हो गई थी। शंकरप्रसाद बनाम भारत सरकार (1951) तथा सज्जन सिंह बनाम राजस्थान सरकार (1965) के मुकदमों में संसद की संविधान संशोधन की शक्ति को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। सर्वोच्च न्यायालय में निर्णय दिया कि संविधान के अनुच्छेद 13(2) के अन्तर्गत 'कानून' का तात्पर्य साधारण कानूनों से है, जो संसद द्वारा विधायी संस्था होने के नाते बनाए गए हैं। इन्हें संविधान संशोधन की श्रेणी में नहीं रखा जाएगा। अतः संसद संवैधानिक संशोधन की प्रक्रिया के आधार पर मौलिक अधिकारों में परिवर्तन कर सकती है। इस प्रकार गोलकनाथ मामले (1967) से पूर्व सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय था कि संविधान का कोई भी भाग असंशोधित नहीं है और 'अनुच्छेद 368' के तहत संसद संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है, जिसमें मौलिक अधिकार एवं स्वयं 'अनुच्छेद 368' शामिल हैं। किन्तु गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1967) के मुकदमे में सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक निर्णय देकर संसद के सामने एक चुनौती खड़ी कर दी। सर्वोच्च न्यायालय ने 'कानून' शब्द के अन्तर्गत संवैधानिक संसाधन को भी सम्मिलित करते हुए यह निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं कर सकती। इसी फैसले के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय ने 10 फरवरी, 1970 को बैंक राष्ट्रीयकरण अधिनियम को अवैध घोषित कर दिया। 15 दिसम्बर, 1970 को सर्वोच्च न्यायालय ने राष्ट्रपति द्वारा नरेशों के प्रिवीपर्स व विशेषाधिकार समाप्त करने सम्बन्धी अध्यादेश को गैर कानूनी बताया। इससे सर्वोच्च न्यायालय बनाम संसद के बीच संघर्ष की स्थिति पैदा हो गई। देश में एक राजनीतिक विवाद खड़ा हो गया कि संसद सर्वोच्च है या सर्वोच्च न्यायालय? 24 दिसम्बर, 1970 को तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व. इंदिरा गाँधी ने मध्यावधि चुनाव की घोषणा कर दी। आम चुनाव में कांग्रेस पार्टी को दो-तिहाई बहुमत मिल गया। 1971 में जन आकांक्षाओं को ध्यान में रखकर संसद ने 24वाँ एवं 25वाँ संवैधानिक संशोधन किया। 24वें संशोधन द्वारा 'अनुच्छेद 13' में एक उपधारा जोड़ दी गई, जिसमें यह कहा गया कि 'अनुच्छेद 13' में जिस 'कानून' का जिक्र किया गया है, वह संवैधानिक कानून नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि मौलिक अधिकारों में संविधान संशोधन द्वारा कमी की जा सकती है, साधारण कानूनों के माध्यम से नहीं। इसी प्रकार 25वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में एक नया 'अनुच्छेद (31) (ब)' जोड़ा गया, जिसमें कहा गया है कि 'अनुच्छेद 39(इ)' व '39(ब)' के अन्तर्गत दिए गए नीति निर्देशक सिद्धांतों को अमल में लाने के लिए जो कानून बनाए जाएंगे उन्हें इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जाएगा। कि वे मौलिक अधिकारों के विरुद्ध हैं। इस संशोधन के बाद भी सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विवाद खत्म नहीं हुआ। 1973 में केशवानन्द बनाम भारती बनाम केरल राज्य के मुकदमें में संविधान के 24वें संशोधन को चुनौती दी गई। यहाँ सर्वोच्च न्यायालय ने बहुमत से गोलकनाथ मामले के फैसले को बदलकर संसद की संविधान संशोधन की शक्ति को बहाल कर दिया, जिसमें मौलिक अधिकार भी शामिल हैं, किन्तु साथ ही संसद की संविधान संशोधन की शक्ति में

यह राइडर लगा दिया कि इस संविधान संशोधन से संविधान के मूल ढांचे (Basic Structure of the constitution) को बदला नहीं जा सकता। यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय एकमत से अभी तक परिभाषित नहीं कर पाया है कि संविधान का मौलिक ढांचा सिद्धांत (Basic Structure Doctrine) भारतीय संवैधानिक विधि शास्त्र (Constitutional jurisprudence) का मुख्य घटन बन गया है। पालकीवाला⁶ के अनुसार संविधान के मूल ढांचे में निम्नलिखित नौ तत्व हैं संविधान की सर्वोच्चता, भारत की प्रभुसत्ता, देश की अखण्डता, गणतन्त्रीय शासन विधान, लोकतन्त्रात्मक जीवन पद्धति, पंथ रिपेक्षता, स्वतन्त्र और निश्पक्ष न्यायपालिका, संघ व्यवस्था एवं कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के मध्य स्थापित समीकरण। पालकीवाला आगे लिखते हैं कि-“केशवानन्द मामले में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का प्रभाव दूरगामी होगा। न्यायालय ने यह स्वीकार कर लिया है कि सम्पत्ति का अधिकार संविधान के बुनियादी ढांचे का अंग नहीं है और इस अधिकार को बदला जा सकता है। अतः आर्थिक न्याय की स्थापना हेतु संसद विधियों का निर्माण कर सकती है और संविधान में जैसा चाहे वैसा संशोधन भी कर सकती है। संसद का संशोधन शक्ति पर केवल एक ही मर्यादा है, जिसके अनुसार संसद संविधान के मूलभूत ढांचे को नहीं बदल सकती।” अतः आज पालकीवाला की बात सत्य सिद्ध हो गई है।

सरकार को सर्वोच्च न्यायालय के इस निर्णय से कोई विशेष संतोष नहीं हुआ। अतः 1975 में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय इन्दिरा गाँधी द्वारा आपातकाल लागू किया गया तो सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी संसद की सर्वोच्चता को रोकने का जो प्रयास किया गया था, उससे सरकार ने 42वें संविधान संशोधन द्वारा संसद की सर्वोच्चता पुनः स्थापित करके न्यायपालिका के पर कतरने का प्रयास किया। दूसरे शब्दों में, 42वें संविधान संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई कि संसद की संविधान संशोधन की शक्ति की कोई सीमा नहीं होगी और संविधान में किए गए संशोधन को किसी भी आधार पर किसी भी कोर्ट में चुनौती नहीं दी जा सकती। इसी दौरान 1975 में 39वें⁷ संविधान संशोधन द्वारा ‘अनुच्छेद 329 ंद्ध’ जोड़ा गया, जिससे इन्दिरा गाँधी बनाम राजनारायण के मुकदमें में प्रधानमंत्री स्वर्गीय इन्दिरा गाँधी सत्ता में बनी रह सकी। जब इन्दिरा नेहरू गाँधी बनाम राजनारायण का मामला नए संविधान संशोधन (39वाँ संशोधन) के साथ सर्वोच्च न्यायालय पहुँचा तो न्यायमूर्ति बेग न व्यंग्यात्मक ढंग से कहा कि यदि ऐसी बात है तो फिर संविधान की आवश्यकता ही क्या है, किन्तु बाद में राजस्थान⁸ राज्य बनाम भारतीय संघ के मुकदमें में उन्होंने टिप्पणी करते हुए कहा कि सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान की सत्ता के अन्तर्गत सभी कार्यों की संवैधानिकता के अंतिम न्यायधीश की भूमिका का कभी परित्याग नहीं किया है। 1980 में मिनर्वा⁹ मिल्स लि. बनाम भारत सरकार के मुकदमें में सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानन्द भारती मामले में प्रतिपादित मूलभूत ढांचे के सिद्धांत की पुनः पुष्टि की। मुख्य न्यायधीश न्यायमूर्ति चन्द्रचूड ने कहा कि संसद को दी गई असीमित शक्तियाँ और संविधान संशोधन को न्यायिक पुनरावलोकन से बाहर करना संविधान के मूल ढांचे को नष्ट करने के तुल्य है। कोर्ट ने यह भी कहा कि संविधान के एक भाग को जब दूसरे भाग के ऊपर प्राथमिकता दी जाएगी तो मौलिक अधिकार एवं राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के बीच संतुलन एवं सद्भावना में बाधा पड़ेगी और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों के बीच संतुलन एवं सद्भावना में बाधा पड़ेगी और राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों में जो उद्देश्य रखे गए हैं, उन्हें संविधान के भाग 3 में दी गई मौलिक स्वतंत्रताओं को निरस्त किए बिना प्राप्त करना चाहिए।

1990 के दशक से एक बार फिर विधायिका एवं न्यायपालिका की सर्वोच्चता का विवाद सुर्खियों में रहा। आरक्षण की सीमा और क्रीमी लेयर एक बार फिर विचार मंथन के केन्द्र में है।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की तरह अन्य पिछड़े वर्गों को भी मंडल आयोग की सिफारिशों के अनुरूप सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को सरकारी नौकरियों में आरक्षण का लाभ देने वाला एक आदेश अगस्त, 1990 में तत्कालीन प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाली संयुक्त मोर्चा गठबन्धन सरकार ने लागू किया था। अन्त में मंडल आयोग की सिफारिशों के आलोक में सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों को सरकारी नौकरियों में आरक्षण का लाभ देने का मामला सुप्रीम कोर्ट पहुँचा। संविधान के ‘अनुच्छेद 16’ में तहत सरकार नौकरियों में आरक्षण के मामले में विचार करने के लिए पहली बार नौ 10 सदस्यीय संविधान पीठ गठित की गई। प्रधान न्यायधीश न्यायमूर्ति एम.एच.कानिया की अध्यक्षता वाली इस संविधान पीठ ने बहुमत के फैसले से 16 नवम्बर, 1992 को सरकार नौकरियों में आरक्षण की सीमा

50 प्रतिशत निर्धारित करते हुए अन्य पिछड़े वर्गों में से सम्पन्न (Creamy layer) को आरक्षण के लाभ से अलग रखने की व्यवस्था दी। संविधान पीठ के इस निर्णय से पिछड़े वर्गों में सम्पन्न तबके की पहचान कर उन्हें आरक्षण के दायरे में अलग करने की व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ।

इसी प्रकार संद में सवाल पूछने की एवज में घूस लेने वाले बर्खास्त सांसदों ने जब अपने बचाव के लिए सर्वोच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया और लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी ने न्यायपालिका के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए भी इसे संसद के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप का मुद्दा मान लिया तो लगा कि विधायिका और न्यायपालिका टकराव के मार्ग पर खड़ी है। अब अदालत ने बहुमत से दागी सांसदों की बर्खास्तगी को उचित ठहरा दिया है तो टकराव टल गया है किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने संसद की कार्यवाही की समीक्षा का अधिकार अपने पास रखकर देश की सबसे बड़ी पंचायत पर अंकुश भी लगा दिया है।¹¹

इसी पंक्ति में आगे बढ़ते हुए संसद द्वारा सन् 1995 से 2001 के बीच किए गए चार महत्वपूर्ण संविधान संशोधनों¹² (77, 81, 82, 85) की वैधता पर पाँच सदस्यीय पीठ के फैसले से न्यायपालिका एवं विधायिका के बीच टकराव के स्पष्ट संकेत दिखाई पड़ते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने यद्यपि उपरोक्त चारों संविधान संशोधनों को जायज माना है किन्तु उन्हें लागू करते समय कुछ शर्तें लगाकर एक लक्ष्मण रेखा खींच ही दी है।¹² इससे भी आगे बढ़ते हुए 11 जनवरी, 2007 को संविधान की नौवीं अनुसूची पर फैसला सुनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि यदि संसद किसी कानून को नौवीं अनुसूची के हवाले करती है तो भी अदालत को उस कानून की संवैधानिकता की समीक्षा का अधिकार होगा, भले ही संसद ऐसा न चाहती हो। जाने-माने विधि विशेषज्ञ राजीव धवन के अनुसार संसद नौवीं अनुसूची को जारी रखना चाहती है, ताकि वह आरक्षण के कानून का बचा सके। एक तरह से नौवीं अनुसूची वोट हासिल करने का हथियार बन गई है। ताजा फैसले के बाद आरक्षण के मामलों पर जजों की पकड़ मजबूत होगी।¹⁴

इसी बीच तीन महत्वपूर्ण घटनाओं के चलते एक बार फिर कार्यपालिका एवं न्यायपालिका आमने सामने खड़े दिखाई दिए। पहले घटनाक्रम में 29 मार्च, 2007 को सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च शिक्षण संस्थानों में ओबीसी (अन्य पिछड़ा वर्ग) का 27 प्रतिशत आरक्षण दिए जाने सम्बन्धी अधिसूचना के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी। केन्द्र सरकार ने केन्द्रीय शैक्षणिक संस्थान (दाखिला में आरक्षण) अधिनियम 2006 के तहत जनवरी, 2007 में अधिसूचना जारी की थी, जिसके अन्तर्गत केन्द्र द्वारा संचालित उच्चतर शैक्षणिक संस्थानों में सत्र 2007-08 से ओ.बी.सी. के छात्रों को दाखिले 27 प्रतिशत आरक्षण देने का प्रावधान किया गया था। दूसरे महत्वपूर्ण घटनाक्रम में 8 अप्रैल, 2007 को नई दिल्ली में राज्यों के मुख्यमंत्रियों एवं मुख्य न्यायधीशों के राष्ट्रीय सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए प्रधानमंत्री डा. मनमोहन सिंह ने न्यायपालिका को लोकतन्त्र के अन्य अंगों के कार्य-क्षेत्र में अतिक्रमण न करने की सलाह दी।¹⁵ प्रधानमंत्री ने न्यायिक सक्रियता और अधिकार क्षेत्र से बाहर निकल कर आदेश देने की कार्यवाही के बीच भेद करते हुए कहा कि यह बेहद संवेदनशील विषय है और न्यायपालिका सहित सभी अंगों को सुनिश्चित करना होगा कि अधिकार क्षेत्रों को विभाजित करने वाली सीमा रेखा न लांघी जाए। वहीं मौजूद मुख्य बताते हुए कहा कि "यह देश कानून के शासन से शासित होता है और उसका प्रत्येक फैसला उसके अनुरूप ही होना चाहिए। उन्होंने कहा कि कानूनों की संवैधानिक व्याख्या एक सामान्य कानूनी प्रक्रिया है और कई बार कार्यपालिका के कार्यों की समीक्षा से सामने आए नतीजों को लेकर विधायिका और न्यायपालिका के बीच तनाव उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार का तनाव स्वाभाविक है और कुछ हद तक वांछनीय भी।"

तीसरे महत्वपूर्ण घटनाक्रम में ओ.बी.सी. दाखिला आरक्षण के संदर्भ में क्रीमी लेयर वर्ग का आरक्षण में शामिल करने के विषय पर न्यायपालिका एवं कार्यपालिका आमने-सामने खड़ी हो गई है। सरकार क्रीमी लेयर सहित सभी अन्य पिछड़े वर्गों (OBC) को दाखिले में आरक्षण का लाभ दिलाना चाहती है, जबकि न्यायपालिका अन्य पिछड़े वर्गों से क्रीमी लेयर वर्ग को बाहर करके गरीब अन्य पिछड़े तबके को आरक्षण देने के पक्ष में नजर आती है। असी बीच लोकसभा अध्यक्ष सोमनाथ चटर्जी ने न्यायपालिका को अपनी सीमाएँ न लाँघने की सलाह दी तो दूसरी ओर जाने माने संविधान विशेषज्ञ एवं विधिवेत्ता Fail S.

Nariman ने “Judicial Overreach”? Over Ruled” नामक गस्ट कालम में लिखा है कि यद्यपि न्यायपालिका को अपना घर व्यवस्थित करना चाहिए, इसी प्रकार संसद को भी। दूसरा, उनका कहना है कि नागरिक स्वतन्त्रता केवल न्यायपालिका के भरोसे सुरक्षित है, न कि संसद और कार्यपालिका द्वारा। प्रधानमंत्री की सीमा लांघन की टिप्पणी का जिक्र करते हुए का Nariman कहना है कि न्यायिक सीमा लांघना विधायिका एवं कार्यपालिका की अपने उत्तरदायित्वों की अवहेलना का सीधा परिणाम है। दूसरे शब्दों में, कानून बनाने एवं उन्हें लागू करने में ढील अथवा कठोरता से लागू न करने की इच्छा शक्ति के कारण न्यायिक सक्रियता का विकास हुआ है। यदि न्यायधीशों को अपने गिरेबान में झांककर देखना चाहिए तो राजनीतियों को भी अपने गिरेबान में झांककर देखना चाहिए कि जिस जनता ने उन्हें शासन करने का अधिकार दिया है, उसकी अपेक्षाओं पर वो कहाँ तक खरे उतरे हैं। उनका निहितार्थ यह है कि न्यायिक शक्ति को कार्यपालिका अथवा संसद द्वारा अतिक्रमण नहीं किया जाना चाहिए।¹⁶

Fail S. Nariman जैसे विधि विशेषज्ञों द्वारा न्यायपालिका के पक्ष में खड़ा होना इस बात का संकेत देता है कि वोट बैंक की राजनीति के लिए केन्द्र सरकारों ने अलग-अलग समय पर सामाजिक एवं आर्थिक रूप से प्रभावशाली जातियों को ओ.बी.सी. में शामिल करने का जो मुहिम पुरुष की है, उससे बुद्धिजीवी वर्ग दुखी है। कार्यपालिका वोट बैंक बढ़ाने के लिए आरक्षण की समय-सीमा स्पष्ट न करने से उसका केन्द्र सरकार (चाहे किसी भी पार्टी की हो) का विवेकशीलता से निर्णय लेने एवं लागू करने की क्षमता पर अविश्वसनीयता बढ़ी है। अतः ऐसे समय में जब कार्यपालिका न्यायपालिका को उसके अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण का आरोप लगाकर उसको हतोत्साहित करने को प्रयासरत है, देश का बुद्धिजीवी वर्ग ठगा महसूस करता है और भारतीय न्यायपालिका में ही उसे एक आशा की किरण दिखाई देती है, जो कार्यपालिका के दमनकारी कानूनों को रोकने की क्षमता रखती है।

इससे प्रदर्शित होता है कि भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने कानून और संविधान के व्याख्याता का मूल कार्य प्रभावशाली ढंग से निभाया है। जब भी इसके समक्ष सरकार द्वारा लिए गए निर्णयों की पुनः समीक्षा के लिए याचिकाएँ आई हैं, सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी भूमिका का परिचय दिया है। डा. सुन्दर रामन के अनुसार विधायिका और न्यायपालिका का यह परस्पर दावा कि संविधान के हर हिस्से का, संशोधन किया जा सकता है और न्यायिक पुनरावलोकन संविधान संशोधन के हर हिस्से का, संशोधन किया जा सकता है और न्यायिक पुनरावलोकन संविधान संशोधन का रद्द भी कर सकता है, कुछ भी नहीं बल्कि सरकार के दो अंगों के बीच एक तरह की सर्वोच्चता का संघर्ष है। फिर भी तथ्य यह है कि हमारे संविधान निर्माताओं न सरकार के प्रत्येक अंग को अपने क्षेत्र में स्वायत्त बनाया है। संविधान में शक्ति-संरचना की छोटी-छोटी व्याख्याएँ भी हैं और एक-दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप की बहुत कम संभावनाएँ हैं।¹⁷

संविधान संशोधन एवं बदलते सामाजिक-राजनीतिक परिणाम

(CONSTITUTIONAL AMENDMENTS AND ITS CHANGING SOCIO-POLITICAL IMPLICATIONS)

साधारण अर्थों में सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य यह है कि समाज की नई आवश्यकताओं की प्रतिक्रिया स्वरूप संविधान की मौजूदा व्यवस्थाओं में परिवर्तन की जरूरत है, जिससे उसका आने वाली नई सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जरूरतों के साथ तालमेल बैठ सके। दूसरे शब्दों में, सामाजिक परिवर्तन का अर्थ नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के उद्देश्य से सामाजिक-आर्थिक संस्थाओं का पुनर्गठन, पुनःस्थापना एवं पुनःनिर्माण से है, ताकि लोगों की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ लोग सुखी जीवन भी व्यतीत कर सकें। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के समय की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के परिवेश में संविधान निर्माताओं ने संविधान के उद्देश्योंको संविधान की प्रस्तावना में प्रत्यक्ष रूप से संजोया। संविधान की प्रस्तावना में प्रदत्त उद्देश्यों से भारतीय राज्य का मुख्य ध्येय-सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीति न्याय की प्राप्ति स्पष्ट होता है। आस्टिन के अनुसार इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संविधान द्वारा प्रशासनिक एवं राजनीतिक एकता के लिए प्रयत्न करना था और लोकतांत्रिक संविधान के दायरे में ही आर्थिक एवं सामाजिक क्रान्ति लानी थी।¹⁸

भारतीय संविधान निर्माताओं की मूल समस्या यह थी कि संविधान संशोधन की एक ऐसी प्रक्रिया अपनाई जाए जिससे नई परिस्थितियों के पैदा होने के साथ-साथ संविधान सुधार एवं विकास की नई जरूरतों का कामयाब साधन बन सके। 19 भारतीय संविधान में संशोधनों की गति एक समान नहीं रही। 1950 के दशक में मात्र नौ संविधान संशोधन किए गए जबकि अगले दशक में पन्द्रह संशोधन किए गए। परन्तु 1970 के दशक में संविधान संशोधनों की बाढ़ सी आ गई। इस दशक में इक्कीस संविधान संशोधन किए गए और 59 धाराओं वाला ब्यालीसवाँ संशोधन किया गया। 1980 के दशक में सत्रह संशोधन और 1990 के दशक में अठारह संशोधन हो चुके हैं और कई महत्वपूर्ण संविधान संशोधन राष्ट्रीय दलों के बीच सहमति के अभा में संसद के गलियारे के भीतर और बाहर गूँज रहे हैं।

वस्तुतः किसी भी संविधान का निर्माण करते समय भविष्य में उत्पन्न होने वाली सभी परिस्थितियों की ठीक से कल्पना नहीं की जा सकती और बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप संविधान में परिवर्तन करना आवश्यक भी होता है।

सामाजिक-राजनीतिक बदलाव की दृष्टि से संविधान संशोधनों को कई श्रेणियों में बांटा जा सकता है: सम्पत्ति के अधिकार एवं भूमि सुधार को लागू करने के लिए किए गए संवैधानिक संशोधन, दलित एवं अन्य पिछड़ी जातियों एवं अन्य पहलुओं से सम्बन्धित संवैधानिक संशोधन तथा लोकतन्त्र के विस्तार एवं सुदृढ़ीकरण के लिए किए गए संविधान संशोधन प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त राज्यों के पुनर्गठन एवं राज्यों की समीमाओं के फेरबदल को लेकर संविधान में सत्रह बार एवं राजनीतिक कार्यसाध्यता को ध्यान में रखकर लगभग नौ बार संविधान संशोधन हुए हैं।

इस प्रकार जहाँ संविधान संशोधनों का स्पष्ट वर्गीकरण अत्यन्त कठिन कार्य हो जाता है, वहाँ प्रत्येक संविधान संशोधन का विस्तृत उल्लेख यहाँ पर समटना अत्यन्त कठिन हो जाता है। अतः मौटे तौर पर सामाजिक राजनीतिक बदलाव को ध्यान में रखकर संविधान संशोधनों का वर्गीकरण इस प्रकार है:

I सम्पत्ति का अधिकार एवं भूमि सुधार से जुड़े संविधान संशोधन

भारतीय नागरिकों को प्राप्त सम्पत्ति का मौलिक अधिकार संविधान का एक ऐसा अधिकार था जिस पर संविधान सभा में काफी वाद-विवाद हुआ था। मूल संविधान में सम्पत्ति के अधिकार का वर्णन संविधान के भाग-तीन पर दो स्थानों में किया गया था। पहले, 'अनुच्छेद 19' में सम्पत्ति को स्वतन्त्रता के अधिकार में रूप में तथा दूसरे, 'अनुच्छेद 31' में इस अधिकार की विस्तृत चर्चा की गई है। अतः मूल संविधान में सम्पत्ति के अधिकार को जो उल्लेख किया गया है, उसमें एक ओर तो सम्पत्ति को अर्जित करने, रखने तथा बेचने की सुविधा थी तो दूसरी ओर राज्य को भी यह शक्ति प्राप्त थी कि वह सार्वजनिक हित में सम्पत्ति के प्रयोग को नियन्त्रित कर सकता था। इसने राज्य को अधिकार तो दिया कि निजी सम्पत्ति अधिग्रहण कर सकता है, पर क्षतिपूर्ति देकर। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में भूमिक सुधार कानून बने, जिनके द्वारा जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई और किसानों को उनकी जमीन का स्वामी मान लिया गया। अतः 1950 में कामेश्वर सिंह बनाम बिहार राज्य के मुकदमें में पटना उच्च न्यायालय ने 'बिहार भूमि सुधार अधिनियम 1950' को इस आधार पर अवैध घोषित कर दिया कि यह 'अनुच्छेद 14' द्वारा प्रदत्त कानून के समक्ष समानता के अधिकार का अतिक्रमण करता है।

प्रथम संविधान संशोधन - पटना उच्च न्यायालय के इस निर्णय के प्रभाव को निरस्त करने के लिए 1951 में पहला संशोधन हुआ जिसके द्वारा 'अनुच्छेद 31(क)' और '31(ख)' तथा नौवीं अनुसूची को संविधान में जोड़ा गया और यह व्यवस्था की गई कि जिन कानूनों को इस अनुसूची में डाल दिया जाएगा उनकी संवैधानिकता को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इस संशोधन ने भूमि सुधार कानूनों को लागू करना आसान बना दिया। इसके बाद पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, तमिलनाडु व केरल की सरकारों ने भी भूमि सुधान कानून बनाए।

चैथा संविधान संशोधन - सम्पत्ति के अधिकार को 1955 में संविधान चतुर्थ संशोधन अधिनियम 1955 के द्वारा पुनः संशोधित किया गया, क्योंकि 'बेला बैलर्जी बनाम पश्चिमी बंगाल राज्य' के मुकदमें में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया

था कि अधिगृहित सम्पत्ति के बदले दिया गया मुआवजा तभी न्यायोचित होगा ज बवह बाजार मूल्य के बराबर हो तथा व्यवस्थापिका को इसी आधारपर कानून का निर्माण करना चाहिए। संविधान के चतुर्थ संशोधन के द्वारा (1) एक नए 'अनुच्छेद 31(2)' में परिवर्तन करे मुआवजे की राशि की प्रयाप्तता या अपर्याप्तता के प्रश्न को न्यायालयों के क्षेत्र से बाहर रख दिया गया। (2) एक नया 'अनुच्छेद 31 (2)' भी जोड़ा गया, जिसके द्वारा सम्पत्ति के अनिवार्य अर्जन अथवा अधिग्रहण की निश्चित व्याख्या की गई।

(3) 'अनुच्छेद 31 (क)' में परिवर्तन करके '31 (क) (1)' के अनुसार यह भी स्पष्ट किया गया कि कुछ विशेष प्रकार के कानूनों को 'अनुच्छेद 14' (समानता का अधिकार), 19 (स्वतन्त्रता का अधिकार) तथा 31 (सम्पत्ति का अधिकार) का उल्लंघन करने वाला नहीं माना जाएगा।

सत्रहवाँ संविधान संशोधन - 1964 में 'कुन्हीकुणम बनाम केरल राज्य' के मुकदमें में सर्वोच्च न्यायालय ने केरल कृषि भू-सम्बन्धी अधिनियम, 1961 को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित कर दिया कि रैयतवाड़ी भूमि 'अनुच्छेद 31 (क) (2)' के अन्तर्गत विवेचित सम्पदा या जागीर (Estate) शब्द की परिभाषा नहीं आती है। इस संशोधन के द्वारा (1) सम्पदा अथवा जागीर की विवेचना का विस्तार करके रैयतवाड़ी प्रथा के अधीन जमीन भी इसी शब्द के अन्तर्गत आ गई। (2) नौवीं अनुसूची में कुछ भूमि सुधार सम्बन्धी अधिनियमों को और सम्मिलित किया गया है।

पच्चीसवाँ संविधान संशोधन - 'गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य' (1967) के मुकदमें के फैसले की पृष्ठभूमि में पच्चीसवाँ संविधान संशोधन (1971) किया गया। इस संशोधन के द्वारा (1) 'अनुच्छेद 31 (2)' में से मुआवजा (compensation) शब्द को हटाकर उसके स्थान पर राशि (amount) शब्द का प्रयोग किया गया। (2) सम्पत्ति के अर्जन अथवा अधिग्रहण सम्बन्धी किसी कानून को इस आधार पर असंवैधानिक घोषित नहीं किया जा सकेगा कि वह 'धारा 19 (1) (च)' में दिए गए सम्पत्ति के अर्जन, अधिग्रहण और व्ययन की स्वतन्त्रता पर अंकुश लगाता है। (3) इस संशोधन द्वारा एक 'उपधारा 31 (ग)' जोड़ी गई, जिसके द्वारा यदि कोई कानून 'अनुच्छेद 39 (ख)' और '(ग)' में निहित राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों को लागू करने के लिए बनाया जाएगा तो उसे न्यायालय असंवैधानिक अंकुश नहीं कर सकता।

42वाँ संविधान संशोधन - (1976) के द्वारा सम्पत्ति के अधिकार में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए यथा (1) राज्य सार्वजनिक हित के लिए सम्पत्ति अधिग्रहण कर सकता है और अधिगृहित सम्पत्ति के बदले निश्चित राशि दी जाएगी। यहाँ महत्त्वपूर्ण बात यह जोड़ी गई है कि अधिगृहित सम्पत्ति के बदले में दी गई रकम के सम्बन्ध में व्यक्ति न्यायालय से कोई सुरक्षा प्राप्त नहीं कर सकता। (2) यदि सम्पत्ति अधिग्रहण राज्य के कानून द्वारा किया जाता है तो उस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है। (3) न्यायालय को इस बात का परीक्षण करने का अधिकार है कि राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों को लागू करने के लिए सम्पत्ति का अधिग्रहण किया है या नहीं? (4) संविधान की नौवीं अनुसूची में डाला गया सम्पत्ति सम्बन्धी कानून न्यायिक समीक्षा के अधिकार से बाहर होगा और अन्त में (5) यदि सम्पत्ति के अधिग्रहण से सम्बन्धित कानून का सम्बन्ध अल्पसंख्यक वर्ग से है तो राज्य इस बात की व्यवस्था करेगा कि उन वर्गों का सम्पत्ति का अधिकार सीमित अथवा समाप्त नहीं होगा।

44वें संविधान संशोधन अधिनियम (1978) के द्वारा एक नया 'अनुच्छेद 300 (क)' जोड़ा गया। 'अनुच्छेद 31' की उपधारा (1) को भाग तीन से निकालकर 'अनुच्छेद 300 (क)' डाल दिया गया है। उपधारा (2), जिसका सम्बन्ध सम्पत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण से था, निरस्त कर दिया गया। इस संशोधन के द्वारा 'अनुच्छेद 19' के खंड (1) के उपखंड (च) को जिसका सम्बन्ध सम्पत्ति के अर्जन तथा वाक्य देखें की गारन्टी से था, समाप्त कर दिया गया है। भारतीय संविधान के इस संशोधन के बदा सम्पत्ति धारण का अधिकार अब मौलिक अधिकार नहीं है। लेकिन कानूनी अधिकार है। अब यह व्यवस्थापिका पर निर्भर है कि वह किसी व्यक्ति को कानून के अधिकार के द्वारा सम्पत्ति से वंचित कर सकती है।²⁰ डी.डी. बसु का विचार है कि 44 वें संशोधन अधिनियम का उद्देश्य क्षतिपूर्ति के मौलिक अधिकार को समाप्त करना था, जिसके उल्लंघन के आधार पर न्यायालय सम्पत्ति के अधिग्रहण को अवैध घोषित कर देते थे।²¹

चूँकि भूमि सुधार से जुड़ी हुई समस्याएँ सम्पत्ति के अधिकार से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ी हुई हैं। अतः संविधान में 29वाँ (1972), 34वाँ (1974), 39वाँ (1975), 40वाँ (1976) और 47वाँ (1984) संशोधन किए गए, जिनके द्वारा अनेक राज्यों द्वारा पारित भूमि सुधार कानूनों को संविधान की नौवीं अनुसूची में जोड़ दिया गया, ताकि न्यायालय उन्हें असंवैधानिक घोषित न करे। संविधान का 34वाँ संशोधन अधिनियम, 1974 इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था कि इस संशोधन द्वारा संविधान की नौवीं अनुसूची में डाले जाने वाले कानूनों में पहले के कानूनों की तुलना में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए थे। उदाहरण के लिए भूमि सीमा का स्तर कम किया गया था, सीमा लागू करने की इकाई व्यक्ति के बदले परिवार बनाई गई, छूट (exemptions) का दायरा बहुत कम कर दिया था और 1995 में 78वाँ संविधान संशोधन द्वारा विभिन्न राज्यों द्वारा पारित भूमि सुधार अधिनियमों को संविधान की नौवीं अनुसूची में डाल दिया गया, जिससे नौवीं सूची में डाले गए अधिनियमों की संख्या बढ़कर 284 हो गई है।

II दलित एवं अन्य पिछड़ी जातियों तथा अन्य सामाजिक पहलुओं से सम्बन्धित संवैधानिक संशोधन

संवंधान निर्माताओं ने अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य कमजोर वर्गों (Other Backward classes) की स्थिति को सुधारने के लिए संविधान के अनुच्छेद 15, 15 (4), 16 (4), 17 के तहत कई संविधानिक सुरक्षाओं की व्यवस्था की है। राज्य सरकार की संस्तुति पर संविधान के 'अनुच्छेद 341' के तहत भारत के राष्ट्रपति को यह शक्ति है कि वह किसी भी जाति को अनुसूचित जातियों की सूची से निकाल अथवा शामिल कर सकता है। इसी प्रकार संविधान के 'अनुच्छेद 330', '332' एवं '334' में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए लोक सभा एवं राज्य विधानमंडलों में स्थान सुरक्षित करने की व्यवस्था की गई है। 'अनुच्छेद 335' में इस की व्यवस्था है कि राज्य सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए स्थानों में आरक्षण के दावे को सदैव ध्यान रखे। इसी प्रकार संविधान के 'अनुच्छेद 338' में यह व्यवस्था है कि अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के हितों की रक्षा के लिए राष्ट्रपति एक आयुक्त की नियुक्ति कर सकते हैं। संविधान में आठवाँ, तेईसवाँ, पैंतालीसवाँ, बासठवाँ एवं उन्हत्तरवाँ संशोधन अधिनियमों के द्वारा संसद एवं राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों एवं आंग्ल-भारतीयों के आरक्षण को हर बार दस वर्ष के लिए बढ़ाकर 2010 तक निश्चितकर दिया है।

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के आरक्षण से जुड़े अन्य मुद्दों के सम्बन्ध में 77वाँ संविधान संशोधन (1995) द्वारा सरकारी नौकरियों में पदोन्नति में भी आरक्षण की व्यवस्था करना, 81वाँ संशोधन अधिनियम (2000) द्वारा सरकारी नौकरियों में खाली पड़े स्थानों का आरक्षण (reservation of unfulfilled vacancies) 82वाँ संविधान संशोधन द्वारा सरकारी नौकरियों में योग्यता के अंकों में ठील दिया जाना (relaxation in qualifying marks), 85वाँ संविधान संशोधन (2001) द्वारा आरक्षण नियमों के तहत पदोन्नति के मामले में आनवांशिक वरीयता प्रदान करना एवं 65वाँ संविधान संशोधन (1990) द्वारा अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए एक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया, किन्तु 2003 में 89वाँ संविधान संशोधन द्वारा अनुसूचित जनजातियों के लिए अलग से अनुसूचित जनजाति आयोग के गठन का प्रावधान किया गया।

इसी दिशा में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों की तरह अन्य पिछड़े वर्गों को भी मंडल आयोग की सिफारिशों के अनुरूप सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को सरकारी नौकरियों में 27 आरक्षण का आदेश अगस्त, 1990 में वी.पी. सिंह (राष्ट्रीय मोर्चा, गठबंधन) सरकार द्वारा लागू किया गया। इसी दिशा में एक कदम आगे बढ़ते हुए 93वाँ संविधान संशोधन द्वारा इन्हीं सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को शिक्षा संस्थाओं में पढ़ाई के लिए 27 स्थान आरक्षित करने की व्यवस्था की है।

इसी प्रकार 86वाँ संवैधानिक संशोधन (2002) द्वारा महत्त्वपूर्ण सामाजिक पहलू को आगे बढ़ाया। इसमें 6 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है।

II. राजनीतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण संवैधानिक संशोधन

इसी प्रकार विधायिकाओं, कार्यपालिका, न्यायपालिका, प्रशासन आदि विशयों पर संविधान में 23 बार संशोधन किए गए। इस श्रेणी में दो महत्त्वपूर्ण संविधान संशोधनों को रखा है; जिनके द्वारा भारतीय लोकतंत्र का दायरा बढ़ा है एवं राजनीतिक शक्ति के विकेन्द्रीकरण को सहायता मिली है। पहला, 61वें संविधान संशोधन द्वारा विधायिकाओं में वोट डालने की आयु 21 वर्ष से घटाकर 18 वर्ष कर दी गई। दूसरा, 1992 के 73वें व 74वें संविधान संशोधनों द्वारा स्थानीय स्व शासन संस्थाओं को सशक्त बनाने की कोशिश की गई। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम में पंचायती राज के लिए त्रिस्तरीय ढांचा सुझाया गया। इसके अतिरिक्त हर स्तर की पंचायत में 33 प्रतिशत सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित कर दी गई हैं। पंचायतों को दिया गया। अनुदान राज्य वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार मिलेगा। 74वें संशोधन अधिनियम द्वारा नगरीय संस्थाओं (नगर निगम, नगरपालिका आदि) को अब संवैधानिक दर्जा मिल गया है। नगर निगम एवं नगरपालिकाओं में एक तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित की गई हैं। इसी प्रकार 124वें संविधान संशोधन (2019) के द्वारा सामान्य वर्ग के निर्धन पृष्ठभूमि वाले युवाओं के लिए नौकरियों व उच्च शिक्षा में दस प्रतिशत आरक्षण सामाजिक समरसता के दृष्टिकोण उठाया गया। बहुत ही महत्त्वपूर्ण कदम है। हालांकि अभी इस संविधान संशोधन को सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुर्ननिरीक्षण को परीक्षा से गुजरना बाकी है।

राजनीतिक दृष्टिकोण से संविधान संशोधन 61, 73 एवं 74 भारतीय लोकतन्त्र के मील का पत्थर साबित होंगे। भारतीय लोकतन्त्र का आधार बढ़ा है और इनसे लोकतन्त्र की जड़ें और अधिक मजबूत होंगी।

संविधान संशोधन का सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था पर प्रभाव

(IMPACT OF CONSTITUTIONAL AMENDMENT ON SOCIO-POLITICAL SYSTEM)

आधुनिक लोकतांत्रिक संविधानों की संरचना इस प्रकार की जाती है कि वे आधुनिक समाजों की उभरती आवश्यकताओं को सफलतापूर्वक पूरा कर सकें, परन्तु संविधान अचल अथवा स्थिर नहीं होते, जरूरतों एवं न अपेक्षाओं में बदलाव के साथ-साथ संविधानों में भी संशोधन किए जाते हैं, ताकि वे समाज की नई आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। वस्तुतः संविधान की सफलता केवल पवित्र विचारों पर निर्भर नहीं करती बल्कि उन उद्देश्यों को व्यवहार में सफलतापूर्वक प्राप्त करने में होती है। कोई भी सामाजिक-राजनीति व्यवस्था अमूर्त गुणों के बल पर जीवित न रहकर जनता की जायज माँगों को पूरा करने की समर्थता पर जीवित रहती है। भारत जैसे विशाल देश को पुरानी एवं नई समस्याओं से जूझते हुए आर्थिक-सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में नए अवसर एवं नई उर्जा के लिए नए रास्ते खोजने थे। निःसन्देह मात्र 69 वर्ष के अल्पकाल में 103 संविधान संशोधन संख्या की दृष्टि से अधिक लगते हैं किन्तु भारत जैसे विशाल देश की सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं सामाजिक विविधताओं एवं सामाजिक-आर्थिक जटिलताओं के समक्ष संविधान संशोधनों की संख्या महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण यह है कि ये सभी संशोधन भारतीय समाज को किस दिशा में ले जा रहे हैं। 1947 के आजाद भारत में आर्थिक, सामाजिक क्षेत्र में जमींदारी प्रथा, छुआछूत की जहरीली सामाजिक बुराई, मात्र 16 लोगों का शिक्षित होना, गरीब-अमीर के बीच चैड़ी खाई आदि-आदि समस्याएँ व्याप्त थीं। आजादी के बाद संविधान संशोधनों के माध्यम से सम्पत्ति के अधिकार की समाप्ति, भूमि सुधार कानूनों को लागू करने में आई बाधाओं को दूर करने के लिए नौवीं अनुसूची का सृजन, बैंकों का राष्ट्रीयकरण, प्रिवीपर्सों की समाप्ति, सरकारी नौकरियों एवं शिक्षा संस्थाओं के दाखिले में अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं ओ.बी.सी. के लिए आरक्षण का प्रावधान, पंचायत एवं स्थानीय स्व शासन संस्थाओं (73वें व 74वें संविधान संशोधन द्वारा) का सृष्टीकरण आदि संविधान संशोधन एक व्यापक सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तन की ओर संकेत कर रहे हैं।

यद्यपि राजनीतिक संस्थाओं का निरन्त ह्रास, व्यापक जन-जागृति का अभाव, व्यापक अशिक्षा, ग्रामीण क्षेत्रों में मैला ढोने एवं छुआछूत की प्रथा की उपस्थिति गरीब-अमीर के बीच बढ़ती खाई, आज 72 वर्ष की आजादी के बावजूद कायम है। इस तथ्य से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि भारत जैसे विशालकाय एवं विविधता से पूर्ण देश में सामाजिक-राजनीति परिवर्तन का रथ मात्र संविधान संशोधन के भरोसे व्यवहारिक धरातल पर खरा नहीं उतर सकता, उसके लिए सामाजिक स्तर

पर भ्रूजी प्रयास किए जाने की जरूरत है। उसके लिए सरकार की इच्छा शक्ति एवं न-जागृति मिलकर भारत को सामाजिक-आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं से छुटकारा दिला सकती है।

निष्कर्ष

संविधान निर्माताओं ने संविधान संशोधन के सम्बन्ध में मध्यम मार्ग को अपनाया है। इस मध्यम मार्ग को अपनाते समय संविधान निर्माताओं का विशेष ध्यान नवनिर्मित संघीय ढांचे की ओर था। देश की सांस्कृतिक बाहुल्यता में अनेकता में एकता बनाए रखने के लिए संसद साधारण विधि से संविधान के अनुच्छेद 3, 4, 169 एवं 239। में संशोधन कर सकती है। उपरोक्त सभी अनुच्छेद राज्यों की सीमाओं, नामों व क्षेत्रफल से जुड़े हैं। अतः भारतीय संविधान की संशोधन प्रक्रिया संघात्मक ढांचे के अनुकूल है। डा. अम्बेडकर ने भी अपनी पुस्तिका Thoughts on Linguistic States¹ में लिखा है कि 'अनुच्छेद 3' के अन्तर्गत संविधान में संसद को नए राज्य बनाने की शक्ति इसलिए दी गई है क्योंकि संविधान सभा के पास भाषायी आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के लिए समय का अभाव था, जिसके लिए उस समय सरकार पर बहुत दबाव था। वस्तुतः 1947 के दौरान की परिस्थितिया, जिसमें भारत का विभाजन, साम्प्रदायिक दंगे, खाद्य संकट, तेलंगाना में साम्यवादियों का विद्रोह, कश्मीर पर पाकिस्तान का आक्रमण प्रमुख हैं, इन्हीं से प्रभावित होकर संसद ने साधारण बहुमत से संविधान के 'अनुच्छेद 3' में संशोधन करने का अधिकार दिया है, जिससे आने वाले समय में भारतीय संसद राज्यों के सम्बन्ध में किसी विकट संकट से जूझ सके।

इस लेखन का दूसरा महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि पिछले 68 वर्षों का राजनीतिक इतिहास यह दर्शाता है कि व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका के संबंध सहज नहीं रहे हैं। 1951 से 1973 के बीच संसद एवं न्यायपालिका के बीच सम्पत्ति के अधिकार को लेकर बार-बार संघर्ष की स्थिति बनी रही। सम्पत्ति के अधिकार पर सर्वोच्च न्यायालय ने तीन मुद्दों को लेकर बार-बार हस्तक्षेप किया। क्या भूमि सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अधिगृहित की गई है? क्या अधिग्रहण के लिए कानून की सत्ता का पालन किया है? क्या भूमि के मालिक को पर्याप्त मुआवजा दिया गया है? बदलते हुए सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीति पर्यावरण में सर्वोच्च न्यायालय ने 1970 के दशक में केशवानन्द भारती मामले में संसद की संविधान संशोधन की शक्ति को बहाल कर दिया, जिसमें मौलिक अधिकार भी शामिल है।

यद्यपि सम्पत्ति के अधिकार को लेकर सर्वोच्च न्यायालय का दृष्टिकोण बदलता गया और इस मुद्दे पर संसद के साथ अभी तक संघर्ष की स्थिति पुनः पैदा नहीं हुई, किन्तु सर्वोच्च न्यायालय ने संसद की संविधान संशोधन की शक्ति में एक बड़ी सीमा लगा दी कि इस संविधान संशोधन में संविधान के मौलिक ढांचे को नहीं बदला जा सकता है। जिससे मूल ढांचा सिद्धांत भारतीय संवैधानिक विधि शास्त्र का मुख्य घटक बन गया है। अपनी इसी संवैधानिक उपलब्धि की सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार पुष्टि की है। इतना ही नहीं, सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी इसी शक्ति के चलते जहाँ एक ओर सरकार की वोट बैंक की राजनीति पर अंकुश लगाने में काफी हद तक सफलता प्राप्त की, वहीं दूसरी तरफ अन्य पिछड़े वर्गों को आरक्षण एवं उच्च शिक्षा संस्थानों में प्रवेश के मुद्दे पर संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाया है। अतः मलाईदार वर्ग (Creamy layers class) का अन्य पिछड़ी जातियों के नौकरियों में आरक्षण से बाहर करना निश्चितरूप से वोट बैंक राजनीति को कड़ा सबक है।

इसी प्रकार आज भी भारत के सामाजिक-राजनीतिक जीवन में कई महत्वपूर्ण समस्याएँ मुँह बाँँ खड़ी हैं किन्तु प्रमुख राजनीतिक दलों के बीच व्यापक राजनीतिक सहमति के अभाव में स्थिति ज्यों की त्यों बरकरार है। सर्व प्रथम, महिलाओं का संसद एवं विधान सभाओं में आरक्षण का विश्रय तात्कालिक एवं महत्वपूर्ण मुद्दा है। इस पर संविधान में जल्द से जल्द संशोधन की आवश्यकता है। प्रमुख राजनीतिक दलों में 'महिलाओं के संसद एवं विधानसभा में आरक्षण' का लेकर कोई सहमति नहीं बन पाई है। ऐसा लगता है कि महिला आरक्षण विधेयक भारत के सभी राजनीतिक दलों के गले में हड्डी की तरह फंस गया है। इसी प्रकार दूसरा गंभीर एवं महत्वपूर्ण विशय का (Protection of Rights on Marriage) Bill 2018 का है। यह विधेयक मुस्लिम समाज में सदियों से जारी 'तीन तलाक की सामाजिक बुराई' के खिलाफ लाया गया है। राज्य सभा में सत्ताधारी दल के पास पर्याप्त बहुमत न होने के कारण यह विधेयक पास नहीं हो सका है। अतः सरकार ने पुनः अध्यादेश

जारी किया है। तीन तलाक का मुद्दा अक्टूबर, 2015 से राष्ट्रीय सुर्खियों में आया, जब सर्वोच्च न्यायालय ने जनहित याचिका और तीन तलाक पर रोक लगाने की माँग करने वाली मुस्लिम महिलाओं की याचिकाओं को स्वीकार कर लिया। इसके केन्द्र में उन मुस्लिम महिलाओं की तकलीफों से भरी निजि जिंदगी थी, जो परम्परा और आधुनिकता एवं मजहब और कानून के बीच फँसकर रह गई थी। तीन तलाक अध्यादेश का खास महत्व है। यह मुस्लिम महिलाओं की बराबरी के लिहाज से इसे बड़ा हथियार माना जा रहा है।

इसी प्रकार का तीसरा महत्वपूर्ण मुद्दा जो महिलाओं के साथ भेदभाव करने वाला है। अगर एक कश्मीरी पुरुष किसी गैर कश्मीरी महिला से शादी करता है तो वह अपनी सम्पत्ति अपने बच्चों को दे सकता है लेकिन अगर कोई कश्मीरी महिला किसी गैर कश्मीरी से शादी करती है तो उसके बच्चे अपनी पैतृक सम्पत्ति पर अपना दावा खो देते हैं। कश्मीरी महिलाओं के खिलाफ भेदभाव के लिए भारतीय संविधान का अनुच्छेद 35। जिम्मेदार है। 14 मई, 1954 को तत्कालीन राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद ने एक आदेश पारित किया था। इस आदेश के जरिए भारत के संविधान में एक नया Article 35A जोड़ दिया गया। बाद में इसे साल 1954 में राजेन्द्र प्रसाद द्वारा हस्ताक्षरित संविधान आदेश के जरिए अनुच्छेद 370 के तहत शामिल कर लिया गया था। यह अनुच्छेद जम्मू-कश्मीर की विधान सभा को राज्य के 'स्थायी नागरिक' और उन स्थायी नागरिकों के अधिकार एवं विशेषाधिकार परिभाषित करने की शक्ति प्रदान करता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद Art 35A के अनुसार एक गैर स्थायी निवासी, जम्मू कश्मीर में अचल सम्पत्ति नहीं खरीद सकता, वोट नहीं कर सकता, सरकारी नौकरी अथवा सरकारी सहायता प्राप्त शैक्षणिक संस्थान में प्रवेश नहीं कर सकता। है। Art 35A को चारू वाली खन्ना, जो मूलतः कश्मीरी महिला है, ने सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी है। इस अनुच्छेद को लेकर कानूनी विशेषज्ञों की राय है कि Art 35A के प्रस्ताव के लिए संसद में न तो कोई वोटिंग हुई और ना ही कोई चर्चा। बिना संसद से पारित हुए ही इसे राष्ट्रपति के आदेश से संविधान में शामिल कर लिया गया था। अतः इस भेदभावपूर्ण अनुच्छेद को हटाने के लिए राष्ट्रपति से नया आदेश पारित करके Art 35A को रद्द किया जा सकता है।

इस प्रकार भारतीय संविधान में संशोधन के बदलते सामाजिक-राजनीतिक आयाम बदलते भारत का चलचित्र पेश करते हैं। भारत जैसे विषाल देश की सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं सामाजिक विविधताओं एवं सामाजिक-आर्थिक जटिलताओं के समक्ष संविधान संशोधनों की संख्या महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि कौने-कौने सी दिशा में संविधान संशोधन का फोकस है, वो अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामान्य वर्ग के निर्धन पृष्ठभूमि वाले युवाओं के लिए नौकरी एवं शिक्षा में दस प्रतिशत आरक्षण, मुस्लिम महिलाओं में प्रचलित तीन तलाक की कुप्रथा को रोकने के लिए लाया बिल आदि भारतीय लोकतन्त्र के लिए शुभ एवं सकारात्मक संकेत हैं।

संदर्भ सूची

1. पुखराज जैन व भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भारतीय संविधान में उद्भूत आगरा: साहित्य भवन 1990 पृ. 244 C.A. Debate., Vol. VII, 8 November 1948, pp.322-23
- 2- In the Golak Nath case, the Petitioners had challenged the constitutionality of the 17th amendment to the constitution in 1966 which had added the Mysore Land Reforms Act, 1960 (entry no. 51) and the Punjab Security of and Tenures Act, 1953 (entry no. 54) to the Ninth schedule of the constitution under which they had been deprived of their lands declared surplus by the State of Mysore and Punjab.
- 3- Keshvanand Bharti V. State of Kerla AIR 1973 Supreme Court 1461. (N.A. Palkhivala argued for 33 days for the petitioners; HM Seervai, the Counsel for the state of Kerla, for 22 days; and the Attorney General Niren De for 10 days).
- 4- N.A. Palkhivala, "Should we alter our constitution" illustrated weekly of India & January 1976, pp 8-9
- 5- 39वाँ संविधान संशोधन राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री तथा संघीय अध्यक्षों के निर्वाचन सम्बन्धी विवादों (disputes) से था। इस संशोधन द्वारा विवाद (disputes) को सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों के कार्यक्षेत्र से बाहर कर दिया गया था।
- 6- State of Rajasthan v. Union of India AIR 1977 SC 1361
- 7- Minerva Mills Ltd. v. Union of India AIR 1980 SC 1789
8. अनूप भटनागर, क्रीमीलेयर...फिर उठा बवंडर, हिन्दुस्तान, नई दिल्ली, रविवार 5 नवम्बर 2006 पृ. 11 सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय इन्दिरा साहनी बनाम भारत सरकार के मुकदमें में सुनाया था।

9. संवैधानिक लक्ष्मण रेखा हिंदुस्तान, नई दिल्ली, शुक्रवार, 12 जनवरी, 2007, पृ. 8
10. चारों महत्त्वपूर्ण संविधान संशोधन अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के आरक्षण एवं पदोन्नति से जुड़े मुद्दों से सम्बन्धित हैं। 77 संविधान संशोधन (1995) के द्वारा सरकारी नौकरियों में पदोन्नति में भी आरक्षण की व्यवस्था करना, 81वें संविधान संशोधन (2000) के द्वारा सरकारी नौकरियों में खाली पड़े स्थानों का आरक्षण (reservation of unfilled vacancies).
11. अनूप भटनागर, सुप्रीम कोर्ट ने खींची आरक्षण की सीमा 20 अक्टूबर, 2006, पृ.1
12. राजीव धवन, नौवीं अनुसूची को अलविदा कहने का समय आ गया, हिंदुस्तान सम्पादकीय, 27 जनवरी 2007 “P.M. Focus on courts role” Hindustan Times April 9, 2007, p.I
- 13- Fail S. Nariman, ‘Judicial overreach? Over ruled’ Hindustan Times (Gues Collumn)
- 14- Dr. Sunder Raman, Constitutional amendments in India (1950-1989) (New Delhi, Eastern Law House 1989) pp-34-35.
15. Granville Austin, The Indian Consitution: Corner Stone of a Nation p.-308
16. D.D. Bashu, Commentary on the constitution of India, Vol.I, Fifthed, P. 18
17. D.D. Basu ; Shorter constitution of India, 1981.
18. Ibid p. 679.
19. B.R. Ambedkar, Thoughts on Linguistic States, Aligarh, Anand Sahitya Sadan, p,9

*** Corresponding Author:**

बलवान सिंह गौतम, चेयर प्रोफेसर
आम्बेडकर पीठ, हिमाचल प्रदेश केन्द्रीय विश्वविद्यालय
Email-bs.20aug@gmail.com, Mobile-9971327848